जल विज्ञान एवं जल संसाधन

पर

प्रथम राष्ट्रीय जल संगोष्ठी

राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान

जलविज्ञान भवन, रुड़की- 247667 (उत्तराखंड)

फोन:- 01332-272106, फैक्स:- 01332-272123,

Email: nihmail@nih.ernet.in, Web: www.nih.ernet.in

जलविज्ञान एवं जल संसाधन
पर राष्ट्रीय संगोष्ठी
15-16 दिसम्बर, 1995, रूड़की

जल प्रबन्धन-धारणा एंव नीति

सुबह सिंह यादव

सारांश

प्रकृति प्रदत्त दुलर्भ साधनों के कुशल उपयोग करके विकास प्रक्रिया को सतुत गति देने के परिप्रेक्ष्य में कृषि उत्पादकता को बढाने के लिये जल स्त्रोत प्रबन्ध एक अपरिहार्य दशा बन चुकी है, विशेषकर भारत जैसी विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में जहां वर्षा अनियन्त्रित, असामयिक व अनिश्चित हो। वर्षा की इस प्रकृति के कारण होने वाली अर्थव्यस्था की अस्थिवस्ता से कारगर ढंग से निपटने के लिये उपलब्ध जल स्त्रोंतों के प्रबन्ध पर वृद्विशील बल प्रदान किया जा रहा है ताकि सिंचाई के अन्तर्गत क्षेत्रफल को अधिकाधिक बढाया जा सके। मौसम, मृदागठन, स्थ्लाकृति, खाद मात्रा व अन्य विविध सस्य क्रियाओं के अनुरूप जल के प्रयोग की परिवर्तित पद्वति को जल प्रबन्ध कहते है। किसानो को आज भी इन विषयों की पर्याप्त जानकारी उपलब्ध नहीं है, तथा जहां थोडी बहुत जानकारी उपलब्ध है, वह भी सरल भाषा में किसानों तक नहीं पहुंच पाती।

भारत की जल सम्पदा

भारत में जल के विभिन्न पहलुओं पर प्राचीन साहित्य में विस्तृत उल्लेख मिलता है। वेदों मे भी कुँओं, नहरों, बांधों एंव तालाबों के वर्णन के साथ–साथ सिंचाई में इन साधनों के महत्व तथा राजा व प्रजा के कर्तव्यों का उल्लेख है। भारत में अनेंक स्थानों पर सदियों पुराने कुँए इनका प्रमाण है। प्रकृति ने इस देश को विपुल जल सम्पदा सौंपी हैं। सिंचाई के लिये आवश्यक जल प्राप्त करने के हमारे पास प्रमुखः दो स्त्रोत हैः (1) सतही जल, एंव (2) भूगर्भीय जल । भारत में देश के बाहर के सतही प्रवाह, पूर्व वर्ष की सिंचाई की रोकी गई आद्रता तथा जल वर्णन से प्राप्त ताजा जल की मात्रा 442 मिलियन हेक्टेयर मीटर के बराबर अनुमानित की गई है जो वर्तमान सभी मानवीकृत तरीकों द्वारा सिंचित फसली क्षेत्र से दस गुना अधिक क्षेत्रफल की सिंचाई के योग्य है। लेकिन इसमें से लगभग 285 मिलियन हेक्टेयर मीटर (65%) वाष्पीकरण से नष्ट हो जाता है अथवा समुद्र में बह जाता है । केवल 110 मिलियन हेक्टेयर मीटर (25 %) हरीतमा आच्छादन द्वारा वाष्पन के रूप में प्रयोग लाया जाता है, 9 मिलियन हेक्टेयर मीटर भूगर्भीय जल के रूप में धारण किया जाता है ओर केवल 35 मिलियन हेक्टेयर मीटर में से 24 मिलियन हेक्टेयर मीटर सतही जल से तथा 11 मिलियन हेक्टेयर मीटर भू–गर्भीय जल सिंचाइ के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इन समस्त उपयोगों के बाद शेष 3 मिलियन हेक्टेयर मीटर जल अन्य प्रयोगों में आता है। यदि अब हम यह मानें की सिंचाई के लिये प्रयोग लाये जाने जल में से 60% तो नित्यन्दन के रूप में लुप्त हो जाता है, तो हम केवल 14 मिलियन हेक्टेयर मीटर जल ही वर्ष भर में शुद्व सिंचाई के रूप में प्रयोग कर पाते हैं। यह देश में होने वाले कुल वार्षिक जल अर्न्तप्रवाह का केवल 3.2% जल का पूरा उपयोग नहीं किया जाता है। इसमें से भी 50% जल धान की फसल उगाने के कार्य में लिया जाता है जिसे सिंचाई जल का सर्वाधिक अकुशल

संकाय सदस्य, राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान, जयपुर

प्रयोगकर्ता माना जा सकता है क्योकिं यह पानी का प्रयोग तो अधिकतम करती है और उपज कम से कम देती है। यह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है:

तालिका–1 खाद्य फसलों के लिए जल की आवश्यकता तथा प्रति मि.मी. जल कि. ग्रा./हेक्टेयर उपज

फसल	जल आवश्यकता (मि.मी. में)	उपज (कि. ग्रा.)	प्रति मि. मी. जल कि. ग्रा./हे. उपज
चावल	1200	4580	3.7
ज्वार	500	4500	9.0
बाजरा	500	4400	8.0
मक्का	625	5000	8.0
गेंहू	400	5000	12.5

कुछ क्षेत्रों में किये गये अध्ययनों से पता चलता हैं कि धान के लिए प्रयोग किये गये, 680 मि. मी. सिंचाई जल में से केवल 480 मि.मी. का ही वास्तविक प्रयोग किया गया तथा शेष गैर उत्पादन वाष्पन गहरे रिसाव के माध्यम से बेकार चला जाता है। ऐसी स्थिति में यदि नालियों की व्यवस्था ठीक नही होती है तो जलाक्रान्त की समस्या उत्पन्न हो जाती है जहां द्वक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों में धान के लिये करीब 650 मि. मी. जल का प्रयोग किया जाता है, वहां भारत में यह खपत 2,000 मि. मी. है और वह भी इन देशों की तुलना में आधी उपज के साथ । यह मानते हुए कि 1 टन गेंहू पैदा करने के लिये 5000 टन पानी का उपयोग किया जाता है तो 1 टन धान उत्पन्न करने के लिये 18,000 टन पानी की जरूरत पडेगी।

किसी मृदा जल नियंत्रित क्षेत्र विशेष के लिये सर्वाधिक अनुकूल फसल प्रारूप अभि–निर्धारित करना तथा उस फसल प्रारूप में उचित विस्तार प्रयासों द्वारा क्रियान्वित करना कमाण्ड क्षेत्र प्रबन्ध की मूल समस्या है। फसल प्रारूप, मृदा घटक, जलवायु, अधिक मांग के समय नहर क्षमता, मौसम के विभिन्न समयों में पानी की उपलब्धता (वर्षा तथा सतही) फसल के बढने की विभिन्न अवस्थाओं में जलावश्यकता, विनियोग के प्रतिकूल तथा सिंचाई जल के वितरणात्मक न्याय के सामाजिक विचारों पर निर्भर करता है।

जल के उपयोग के संबध में धान सर्वाधिक व्यर्थ पूर्ण फसल दिखाई देता है। अल्प समय वाली फसलें कम जल का प्रयोग करेंगी। यदि धान को मक्का, बाजरा, ज्वार आदि फसलों से प्रतिस्थापित किया जाता है तो सिंचाई के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रफल को 3 गुना बढाया जा सकता है। इन शुष्क सिंचित फसलों की शंकर तथा उच्च्य उपज वाली फसलों से जहां सिंचाई के अन्तर्गत क्षेत्रफल का विस्तार होगा, वहां दूसरी ओर सिंचित फसलों से भी अधिक उत्पादन करने में सहायता मिलेगी। विगत समय में बहुत से कमाण्ड क्षेत्रों में गेहूं इसलिये नहीं उगाया जा सकता क्योकि धान की अधिक समय तक खड़ी रहने वाली किस्मों के कारण रबी मौसम में बुवाई के लिये भूमि की उपलब्धता कम रहती है। नियमित सिंचाई व्यवस्था के अन्तर्गत आलू, सब्जी, गर्मी का मूंग तथा दूसरी दालें तथा तिलहन उगाने पर अधिक ध्यान देना चाहिये।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के एक अध्ययन में बताया गया है कि नहर व्यवस्था में 25% जल मांगों में 22.5% तथा खतों में पानी देने में 21.5% जल का नुकसान होता है। इस प्रकार कुल 69% जल की हानि होती है। यह नुकसान नहरों के कुमलहाने तथा खरपतवार की वृद्वि से होने वाले संचयी नुकसान और अधिक तीव्र होता है खेतों में अपनाई गई सिंचाई की विभिन्न दरों के बीच जल का नुकसान होता है। आप्लावन पद्वति के कारण 7% नाली पद्वति से 30% से 45% मिलियन विधि से 30% से 50%, परिरेखा खाई से 50% से 55% तथा फब्बारा पद्वति से 15% का नुकसान

होता है। भारत में 90% परियोजना के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय भूमि उद्वार संस्था के एक अध्ययन से यह पता चलता है कि जलाशयों से खेतों तक सिंचाई की कार्यकुशलता 20% से 40% है। कुँओं, टॅयूबवेलों के सन्दर्भ में परिवहन नुकसान कम है तथा इन भू–गर्भीय कुँओं के संबंध में जल आवश्यकता 0.65 हेक्टेयर मी. प्रति हे. है जबकि नहर सिंचाई के लिये प्रति हेक्टेयर फसली क्षेत्र के लिये जल आवश्यकता 0.90 हेक्टेयर है।

जल के प्रभावी उपयोग की धारणा को जल सामंजस्य, फसल सामंजस्य तथा मृदा सांमजस्य की गत्यात्मक प्रक्रिया के सम्मेलन के रूप में देखा जा सकता है। यहां पर (1) जल सामंजस्य का अभिप्राय विभिन्न समय बिन्दुओं पर जल की उपलब्धता से है, (2) फसल सामंजस्य का अर्थ फसलों कों बोने जोतने, उगने, फूल आने से पूर्व की अवस्था फूल आने पर दाना बनने आदि विभिन्न निर्णायक अवस्थाओं में जल की आवश्यकता से है, और (3) मृदा सांमजस्य से तात्पर्य इसकी आद्रता धारणा क्षमता तथा इसके कुमहलाने से है।

जल ले जाने एंव वितरण कुशलता बढाने हेतु चार प्रमुख बातों पर केन्द्रित करना होगाः

1. पृष्ठीय नालियों में अप्रेवश्य पदार्थ का अस्तर करना,
2. नालियों में अपरदन रोकने हेतु संरचनाओं, विनाशों का प्रयोग,
3. भूमिगत पाईप लाइनों द्वारा जल ले जाना, एंव
4. जल के वितरण में जल ह्रास की रोकथाम।

सामान्यतः जल हानि नहर अथवा नाली की लम्बाई, जिस भूमि से नहर निकलती है, उस भूमि ाका गठन तथा मौसम जैसे कारकों पर निर्भर करती है, अतः प्रति इकाई उपभोग जल से उपज बढाने, इकाई सिंचित भूमि की उपज को बढाने तथा उपयुक्त भूमि में जल प्रबन्ध तकनीकों द्वारा सिंचित भूमि के क्षेत्रफल को बढाने तथा उपयुक्त भूमि में जल प्रबन्ध तकनीकों द्वारा सिंचित भूमि के क्षेत्रफल को बढाने के मूल उद्देश्य के अनुरूप सामंजस्य तकनीक के व्यवस्थित प्रसार को अपनाना होगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये कि क्या जल अथवा भूमि ज्यादा दुर्लभ भूमि की उपज बढाने पर बल देना होगा। उत्तरीगंगा के मैदानो में बर्फीली नदियों तथा प्रचुर मानसून के बावजूद, जनसंख्या के दबाव के कारण भूमि, जल की अपेक्षा एक दुर्लभ साधन है। अतः हमारा ध्यान बहुफसल कार्यक्रम व निकास द्वारा उपलब्ध भूमि की प्रति एकड़ उपज बढ़ाने पर होगा। प्रायद्वीपीय वाली फसलों में परिवर्तित करकें जल की प्रति इकाई उत्पादकता को बढाना बेहतर होगा। इसके लिये फसलों का स्थानीयकरण, नहरों का रेखाकंरण सिंचाई की रोस्टर पद्वति तथा रात्रि में सिंचाई करने जैसे उपाय व्यवहारिक होंगे।

सिंचाई के अर्न्तगत क्षेत्रफल बढाने के लिये निम्न तरीकों को अपनाया जा सकता है।

1. जल नुकसान को घटाना,
2. फसल प्रारूप बदलना,
3. छोटी अवधि वाली फसलों की बुवाई,
4. जल की राशनिंग,
5. बहु फसल कार्यक्रम तथा
6. नियमित जल आपूर्ति की दशा में ग्रीषमकालीन सिंचाई इत्यादि ।

लेकिन चाहे पानी अथवा भूमि दुर्लभ साधन रहा हो, उपरोक्त व्यवस्था अभी भी काबू से बाहर रही हैं इसलिये सिंचित क्षेत्रों में फसलों की संधमता कों बढाकर अथवा अंसिचित कमाण्ड क्षेत्र को सिंचाई के अर्न्तगत लाकर सिंचाई के क्षेत्र में वृद्वि की जा सकती है।

मृदा जल सम्बन्ध

सिंचाई से मृदा की प्रतिक्रिया बहुत जटिल है और सिंचाई को लाभप्रद बनाने हेतु इस सम्बन्ध की अवहेलना नहीं की जा सकती । मृदा की सिंचाई उपयुक्तता, प्रभावी मृदा आवरण, सतही बनावट, उप मृदा का निकास, मृदा की संरचना,

कटाव बाधा लवण तत्व, द्रविक सुचालकता तथा स्थलकृति पर निर्भर करती है। मिट्टी की आद्रता धारण करने की क्षमता, फसलों के प्रकार तथा पौध अन्तः क्रिया उत्पादन को निर्धारित करती है। कमजोर मृदा व्यापती से सतह मृदा पर जलाक्रान्त, लगनता, खरपतवार, आक्सीजन तथा पोषण संबंधी समस्यायें उत्पन्न होती है। भूमि गठन, आकर, श्रेणीकरण और इसके लिये उपयुक्त सिंचाई आदि मृदा की विशेषताओं द्वारा निर्धारित होती है, सिंचाई आयोग के अनुसार, सिंचाई सम्भाव्य के अल्प उपयोग का मुख्य कारण खेतों में नालिया बनाने की कमी रहा है, अन्य नालियों के लिये 34 रूपये प्रति एकड का विनियोग करने पर किसानों की आय में 350 रूपये प्रति एकड वृद्धि हुई है। विभिन्न प्रकार की मृदा एवं स्थलाकृति को विभिन्न प्रकार के मूल्यों की जरूरत होगी तथा इसके लिये भी नमूने के प्रमाणीकरण की जरूरत होगी।

समेकन एंव समकोणीकरण

कमाण्ड क्षेत्र मे समीकरण तथा खेतों के समकोणीकरण खेतों के जल मार्गो, खेतों की नालियों, तथ सम्पर्क सडक के प्रदर्शन में सहायक होता है। जल मार्गो तथा नालियों की लम्बाई सही समय पर होनी चाहिए। समेकरण के कुछ अन्य लाभ इस प्रकार है।

1. यह जल मार्गो की लम्बाई को कम करता है जो अन्यथा बिखरी हुई जोतो कें सन्दर्भ में टेढ़ी मेंढ़ी होती है।
2. समेन परिरेखा प्रदर्शन से भूमि समतलीकरण की परिसीमा को घटाता है।
3. यह सम्पर्क सडकों के साथ–साथ में कृषि परिचालन को भी सुविधाजनक बनाता है तथा एक ही स्थान पर जोतो को सकेन्द्रित करता है।
4. समस्त फसल प्रारूप (एक ही निकास से) भी समेकन से संभव होता है।
5. समेकन सडकों, जल मार्गो तथा खेत के गूलों के बीच अनेकों तिरछी संरचनाओं को न्यूनतम करने में सहायक होता है।
6. समेकन जल मार्गो व निर्गम द्वार के निकट लघु जोतों का पता लगाने में सहायक होता है।
7. यह भी पाया गया है कि समेकन से उपज में 25% तथा निर्गत आगत अनुपात में 14% की वृद्वि हुई।

यद्यपि यह स्वीकार किया गया है कि जोतो का समेकन तथा समकोणीकरण खेत जल मार्गो की लम्बाई को घटायेगा तथा जल मार्गो व श्वेत नालियों के निर्माण समकोणीकरण के मन्द गति से स्वीकार करने की स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय लिया गया है कि समेकन तथा समकोणीकरण के लिए प्रतीक्षा किये बिना ही जल मार्गों का निर्माण किया जाएगा।

जल निकास

घटिया जल निकास सिंचित क्षेत्र के लिये बहुत घातक है । पानी के संचय के कारण पानी का स्तर बढ जाता है और कैशिकीय क्रिया के द्वारा जल से सना हुआ नमक सतह पर आ जाता है तथा लवण उत्पन्न कर देता है जो भूमि की उत्पादकता के लिये बहुत नुकसानदायक है। जापान के प्रोफसर फाकुदा ने अच्छी सिंचाई को इरिनेज की सज्ञा दी है। यह पाया गया है कि निकास वाले क्षेत्रों में धान के लिए भू तापमान गैर–सिंचित क्षेत्रों से 1.5 ज्यादा है। इससे बुवाई से भी सहायता मिलती है। इच्छा निकास जुताई वाली मशीनों की वृद्विशील परिपथता द्वारा जुताई में भी सहायक होता है। निकास का प्रदर्शन एंव गहराई, मृदा तथा भूगर्भीय जल की दशाओं पर निर्भर करेगा। उच्च परिस्द्रवण वाली मृदाओं से उप–मृदा सघनता तथा मृदा सजावट की जरूरत पडेगी, अथवा बहुत सा सिंचाई जल निकास नहरों के माध्यम से गहरे रिसाव द्वारा व्यर्थ चला जाएगा। सिंचित क्षेत्रों में जल स्तर को उचित निकास द्वारा कोशिकीय परस से उसे पांच मीटर नीचे रखा जाना चाहिए अन्यथा लवणता ऊपर आयेगी।

1959 में भारत सरकार ने राज्य सरकारों को सलाह दी कि निकास परियोजना लागत का भाग होनी चाहिए लेकिन बहुत सारे मामलों में इस सलाह पर अमल नहीं किया गया। मुख्य तथा मध्यवर्ती निकास की कमी के कारण खेती में

नालियों का निर्माण अवरूद हुआ है। यह भी देखने में आया है कि बहुत सारी नालियों पर खेती करने के लिए अनाधिकृत कब्जा कर लिया गया है या गाद भरने अथवा खरपतवार के उगने से ये नालियां बन्द सी हो गईं। इन प्राकृतिक नालियों, मुख्य नालियों तथा मध्यवर्ती नालियों को साफ करने के लिये एक व्यापक अभियान चलाने की आवश्यकता है। निकास व्यवस्था से गेहूं का उत्पादन **4.2** टन प्रति हेक्टेयर से **6.87** टन प्रति हेक्टेयर तक बढ गया है तथा लवणता में भी अत्यधिक कमी आई है।

यह उल्लेखनीय है कि नहरों की पंक्तिबद्वता तथा परिवहन जलाक्रान्त को स्थगित या प्रतिबन्धित करेंगे तो ऐसी स्थिति में भूगर्भीय जल का प्रयोग भी उपयोगी होगा। निकास उदय तथा क्षेतिज दोनो ही प्रकार का हो सकता है, लेकिन साथ में इस बात को ध्यान मे रखना होगा कि भूगर्भीय जल के संदर्भ में लवणता का नमक रहित रहना संभव नहीं है।

जल स्रोत प्रबन्ध की समस्यायें

जल प्रबन्ध की मुख्यतः चार समस्यायें हैः

1. सिंचाई विभाग तथा कृषि विभाग में सिंचाई योजनाओं के निर्माण्य एंव उनके क्रियान्वन में समन्वय का अभाव।
2. पानी ले जाने, वितरण व खेत में प्रयोग करने के नियन्त्रित एंव कारगर उपाय खोजना व अपनाना जिससे जल के वाष्पन, बहाव व रिसाव के रूप में हानि न हो।
3. मृदा गठन, स्थ्लाकृति व अन्य भौतिक गुणों के आधार पर विभिन्प मृदाओं की सिंचाई के लिये उपयोगिता निर्धारित करके उचित मृदा जल प्रबन्ध के तरीके अपनाना।
4. मौसम, मृदा सिंचाई सुविधओं की उपलब्धि के अनुरूप उपयुक्त फसल, चक्र व समय योजना बनाना।

इसके अतिरिक्त योजनाबद्व विकास के दौरान रेलवे लाइन, नहर नगरों में आवास निमार्ण तीव्र गति से हुआ जिससे जल निकास के लिये पय्राप्त नाली एंव पुलियों के निर्माण पर बल नही दिया गया। इससे प्राकृतिक बहाव में रूकावट पैदा होने जल या तो नये रास्ते से होकर गुजरता है या नीचे स्थानों पर रूक जाता है। जलाक्रान्त नीचे स्थानों पर जल रूकने की दशा का ही नाम है। पिछले दशकों में नहरों का जाल बिछ गया हैं ये नहरें जब लवण वाली भूमि से गुजरती हैं तो लवणों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है जिससे क्षारीयता की समस्या पैदा हुई हैं । जनसंख्या के दबाव के कारण जब भी कृषि क्षेत्रों से होकर बहने लगा तो एक अतिरिक्त समस्या उत्पन्न हो गई।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस स्थिति से निपटने के लिये क्या किया जाये। इस सम्बन्ध में अनेक सुझाव सामने आये हैं, उनको अपनाने के साथ–साथ यदि भू–गर्भीय जल का संयुक्त अथवा यौगिक प्रयोग किया जाये तो वांछित परिणाम साामने आ सकते है।

भू-गर्भीय जल का संयुक्त प्रयोग

भारत की कृषि जलवायु दशाओं की वास्तिविकओं की पृष्ठभूमि में तथा अनियमित तथा बेमेल वर्षा व जलाशयों हेतु भण्डारा स्थान का अभाव, जलाक्रान्ति एंव भू–जोतो के बिखराव में भूगर्भीय जल का प्रयोग बहुत लाभदायक तथा अपरिहाय्र है। सतही तथा भूगर्भीय जल का संयुक्त प्रयोग कई अर्थो में सहायता करता है।

1. कम वर्षा के दौरान भूगर्भीय जल साधनों से पम्पों द्वारा पानी निकाल कर नहरी पानी को बढाया जा सकता है।
2. सतही परिवहन प्रणाली को भी भूगर्भीय जल के उपयोग हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है।
3. यदि भूगर्भीय जल लवणायुक्त है तो सतही जल के साथ मिलाने की प्रक्रिया द्वारा इसका प्रयोग नहरी पानी के साथ किया जा सकता है।

4. भूगर्भीय जल का प्रयोग करके उदग्र जल निकास को संभव बनाया जा सकता है और जलाक्रान्त तथा लवणायुक्त के खतरे को कम किया जा सकता है।
5. भूगर्भीय जल का प्रयोग सस्य प्राप्य मे लचीलेपन को बढाता है।
6. भूगर्भीय जल का प्रयोग साामूहिक पौधशाला को स्थापित करने तथा गहरी बुवाइ में सहायक होता है ताकि बहु फसल कार्यक्रम संभव हो सके।

इन उपरोक्त सुझावों के आधार पर किसानों को मार्गदर्शन देने के लिये पर्याप्त विस्तार प्रयासों की आवश्यकता है ताकि (1) फसलों के उत्पादन की प्रति इकाई मात्रा लागत घट सके, (2) फसलोत्पादकता उत्पादन तथा लाभ बढ सके, और (3) सिंचाई के उन प्रतिकूल प्रभावों पर भी काबू पाया जा सके, जिनका आज हम सामना कर रहें है।